International Journal of Hindi Research
ISSN: 2455-2232, Impact Factor: RJIF 5.22
www.hindijournal.com
Volume 3; Issue 1; January 2017; Page No. 58-60

# योगवासिष्ठ में अन्तःकरण विमर्श

**पीयूष अग्रवाल**

शोधछात्र, संस्कृतविभाग, पञ्जाब-विश्वविद्यालय, चण्डीगढ़, पंजाब, भारत

**सारांश**

प्रस्तुत शोधपत्र में अन्तःकरण का स्वरूप स्पष्ट करने का प्रयत्न किया गया है क्योंकि व्यवहार के अन्तर्गत अन्तःकरण (मन+ बुद्धि+ चित्त+ अहङ्कार+ हृदय आदि) की प्रवृत्तियाँ ही प्रमुख होती हैं इसलिये अन्तःकरण के विभिन्न आयामों को जानना और समझना अपेक्षित है। मनोविज्ञान साईकोलोजी का सही अनुवाद है? क्योंकि पश्चिम में "साईकी" शब्द का अपना एक इतिहास है जो एक सांस्कृतिक-वैज्ञानिक-दार्शनिक मूल्य के रूप में प्रयोग होता है। जबकि भारत में मन "अन्तःकरण" का एक भाग है और इस अन्तःकरण में मन-बुद्धि-चित्त-अहंकार सम्मिलित हैं। अतः अन्तःकरण शब्द तो सम्भवतः साईकोलोजी का समीपवर्ती अनुवाद हो सकता है परन्तु फ़िर भी भारतीय मनोविज्ञान को परिभाषित करने में कई व्यावहारिक कठिनाईयाँ दृष्टिगत होती हैं परन्तु अन्तःकरण के अन्तर्गत मनोविज्ञान को इस प्रकार परिभाषित किया जाए कि वह अध्यात्म के क्षेत्र का अतिक्रमण न करे और वह दैनन्दिन समस्याओं का विश्लेषण करे भी और करना सिखाए भी। वेद, उपनिषद्, सहित्य और दर्शन में अनेक गुणात्मक और विश्लेषण पूर्ण तथ्य मन के विषय में कहे गए हैं जिनकी चर्चा अन्तःकरण स्वरूप पक्ष से अपेक्षित है।

**मूल शब्दः** योगवासिष्ठ, मन+ बुद्धि+ चित्त+ अहङ्कार+ हृदय

**प्रस्तावना**

**अन्तःकरण की कुछ वृत्तियों अर्थात् रूप-भेदों का निरूपण-**

1. मन - शुद्ध चेतन आत्मा जब स्पन्दनयुक्त होकर कल्पनात्मक रूप को धारण करे और विषय से गर्भित होता है, तब वह मन कहलाता है।[1]
2. बुद्धि -वही पर-चित् एक परिमित रूप को धारण करके, विषयों की भावना करके यह अमुक विषय है', 'वह अमुक' इस निश्चय को धारण कर लेता है, तब वह बुद्धि के नाम से जाना जाता है।[2]
3. अहङ्कार:- 'मैं हूँ' इस भावना के होने पर वह अहङ्कार कहलाता है। जबकि वह मिथ्या अभिमान के कारण अपने आप ही अपनी स्वतन्त्र सत्ता बनाकर जब संसार के बंधन में पड़ जाता है तो इसका नाम अहङ्कार होता है। [3]
4. चित्त :-जब वह बालक की तरह एक विषय को छोड़कर बिना विचारे ही दूसरे विषय का चिन्तन करता है तब वह चित्त कहलाता है।[4]
5. कर्म :-स्पन्दन क्रिया ही जिसका एक स्वभाव है, ऐसा वह मन अपने भीतर शून्यता का अनुभव करके जब क्रिया द्वारा प्राप्त होने वाले किसी फल की ओर भागता है, तब उसे कर्म कहते हैं।[5]
6. कल्पना :- जब वही मन अकारण अर्थात् अकस्मात् अपने पूर्व प्राप्त विषय की उपेक्षा करके अप्राप्त इच्छित विषयों की कल्पना करने लगता है, तब उसका नाम कल्पना कहलाता है। [6]
7. स्मृति :-पूर्व काल में किसी वस्तु का अनुभव किया हो, अथवा न किया हो, किन्तु उसका निश्चय के साथ जब ऐसा ध्यान आए कि यह वस्तु पूर्वकाल में अनुभूत हो चुकी है, तब मन को स्मृति कहा जाता है।[7]
8. वासना :- जब किसी ऐसे पदार्थ की इच्छा, जिसका भोग अभी तक वास्तव में नहीं, केवल मन में ही हुआ हो, इतनी दृढ़ हो जाती है कि उसके समक्ष किसी अन्य वस्तु की इच्छा न रह जाए, जब मन वासना कहलाता है । [8]
9. अविद्या :- जब वस्तुत: विद्यमान न होते हुए भी आत्मा से अतिरिक्त किसी दूसरे तत्त्व का भाव होने लगे, तब इसको अविद्या कहा जाता है। [9]

10. मल :- नाना प्रकार की मिथ्या कल्पनाओं द्वारा परम पद को भूलाकर आत्मा की हानि कराने के कारण इसका नाम मल होता है। [10]
11. माया :- सत्ता को असत्ता अथवा रूढ़ सत्ता सत् तथा असत् दोनों) बनाने का सामर्थ्य होने के कारण इस मन को माया कहा जाता है। [11]
12. इन्द्रिय :- सुनकर, स्पर्श करके, देखकर, भोगकर एवं सूंघकर इन्द्र अर्थात् परमेश्वर को आनन्दित करने के कारण इसे इन्द्रिय भी कहते है। [12]
13. प्रकृति :- परमात्मा का ज्ञान न होने के कारण, इस दृश्य संसार के समस्त भावों का कारण यह प्रकृति कहलाता है।[13]

उपर्युक्त यह सभी वृत्तियाँ अन्तःकरण की हैं जैसे एक ही मनुष्य अनेक पदों पर कार्य करते हुए अनेक नामों एवं रूपों को धारण कर लेता है, वैसे ही अन्तःकरण भी अनेक प्रकार के कार्य सम्पादन करते हुए अनेक नाम तथा रूपों वाला होता है। संकल्प-विकल्पात्मक अन्तःकरण को मन कहते हैं। निश्चयात्मक अन्तःकरण का नाम बुद्धि है और अहंवृत्ति, विशिष्ट अन्तःकरण का नाम अहङ्कार है। चैतन्य की अनुभूति कराने वाले अन्तःकरण को चित्त कहते हैं देहाविच्छिन्न अन्तःकरण जिसे अहङ्कार से अभिहित किया गया है, इसे 'कर्ता' भी कहा जाता है। देह और घटादि विषयों के मध्य में विद्यमान दण्ड के समान लम्बायमान अन्तःकरण के वृत्ति ज्ञान को क्रिया कहते हैं। विषय को व्याप्त करनेवाला अन्तःकरण ही 'प्रमा' कहा जाता है। सङ्कल्प विकल्पात्मक मुख्य वृत्ति वाले अन्तःकरणज़् की और भी अनेक वृत्तियाँ हैं। जिस प्रकार एक नायक एक ही नाटक में अनेक रूप धारण कर लेता है, उसी प्रकार भिन्न-भिन्न कार्यों को करते हुए मन भी अनेक नामों तथा रूपों को धारण कर लेता है।[14] दूसरे शब्दों में इस अन्तः करण को ऐसे भी कह सकते हैं जैसे कि-

१. मनन करने से इसका नाम मन है।
२. जब वह किसी निर्णय पर पहुंचता है तब उसे बुद्धि कहते हैं।
३. जब उसमें अहं भाव जगता है तब उसका नाम अहङ्कार पड़ता है।
४. जब वह बिना किसी कारण एक विषय से दूसरे विषय की ओर चिन्तन करता है तो चित्त कहलाता है।
५. जब वह किसी कमी पूर्ति के लिये किसी विषय की ओर जाता है तो उसका नाम कर्म है।
६. जब वह विचलित होकर किसी विशेष विषय के ध्यान में लगता है, उसे कल्पना कहते हैं।
७. जब वह किसी पूर्वानुभूत विषय का ध्यान करता है तो उसे स्मृति कहते हैं।
८. जब वह अन्य कर्मों को भुलाकर किसी विशेष विषय की इच्छा करता है तो वासना कहलाता है।
९. ज्ञान प्राप्ति के उपरान्त इसके अस्तित्व का लोप होने के कारण इसे अविद्या कहते हैं।
१०. चूंकि आत्मविनाश के लिये ही इसकी स्फुरणा होती है और इसकी विद्यमानता परमतत्व को तिरोहित करती है, इसलिये इसको मल कहते हैं।
११. यह परमतत्व अर्थात् ब्रह्म को अपनी स्थिति से आवृत्त करता है, अतः इसे माया कहते हैं।
१२. संसार के सभी अनुभव तथा ज्ञान के प्रति यह कारण है, अतः इसे प्रकृति कहते हैं।
१३. इसे जीव भी कहते हैं क्योंकि यह जीता है तथा यह चैतन्य है।
१४. यह पर्युष्टक कहलाता है क्योंकि यह मन, बुद्धि, अहङ्कार तथा पञ्चेन्द्रियों- इन आठों से बना हुआ सूक्ष्मशरीर है।
१५. यह बिना किसी प्रभाव के दूर से दूर तक जा सकता है अतः इसे अतिवाहकशरीर कहते हैं।
१६. यह अपने श्रवण-दर्शन-स्पर्शादि कर्मों से आत्मा को प्रसन्न करता है, इसलिये इसे इन्द्रिय कहते हैं।
१७. कोई-कोई इसे ब्रह्म- विराट- सनातन- नारायण- ईश भी कहते हैं।

## निष्कर्ष

शोधपत्र विषय को चुनने का मुख्य कारण यही है कि भारतीय मनोविज्ञान (भारतीय अन्तःकरण) का एक औपचारिक, तार्किक, व्यावहारिक प्रारूप उपस्थापित करना। इस प्रकार के भारतीय मनोवैज्ञानिक चिन्तन से मानवीय हितों को दृष्टि में रखते हुए एक मानवीय व्यवहार का स्वस्थ चिन्तन सम्वाद सम्भव है।

## संदर्भ ग्रंथ


1. गतेव सकलं कृत्यं कदाचित्कल्पनात्मकम्। उन्मेषरूपिणी नाना तदैव हि मन: स्थिति॥ आत्रेय, भीखन लाल। 2003: योगवासिष्ठ, श्री कृष्ण जन्मस्थान सेवा-संस्थान, मथुरा। पृ.सं. 541 (3/96/17)
2. भावानामनुसन्धानं यदा निश्चित्य संस्थिता। तदैषा प्रोच्यते बुद्धिरियत्ताग्रहणक्षमा॥ योगवासिष्ठ, वही पृ. सं. 541 (3/96/18)
3. यदा मिथ्याभिमानेन सत्तां कष्टयति स्वयम्। अहङ्काराभिमानेन प्रोच्यते भवबन्धनी॥ वही पृ. सं. 541 (3/96/19)

4. इदं व्यक्त्वेदमायाति बालवत्पेक्ष्वा यदि। विचारं संपरित्यज्य तदा सा चितमुच्यते॥वही पृ. सं. 541 (3/96/20)
5. यदा स्पन्दैक धर्मत्वारकर्तुर्या शून्यशंसिनी। आधावति स्पन्दफलं तदा कर्मेप्रदाहृता॥वही पृ. सं. 541 (3/96/21)
6. काकतालीययोगेन त्यक्त्वैक धननिश्चयम्। यदेहितं कल्पयति भावं तेनेह कल्पना॥ वही पृ. सं. 541 (3/96/22)
7. पूर्वदृष्टम दृष्टं वा प्राग्दृष्टिमिति निश्चयै:। पदैवेहां विद्यत्तोऽन्तस्तदा स्मृति रूदाहृता॥वही पृ. सं. 541 (3/96/23)
8. यदा पदार्थशक्तीनां संभूवतानामिवाम्बरे। वसत्यस्तमितान्येहा वासनेति तदो-व्यते॥वही पृ. सं. 541 (3/96/24)
9. अस्त्यात्मत्तात्वं विमलं द्वितीया दृष्टिरङ्किता। जाता ह्यविद्यमानैव तदाविद्येति कथ्यते॥ वही पृ. सं. 541 (3/96/25)
10. स्फुरव्यात्मविनाशाय विस्मारयति तत्पदम्। मिथ्याविकल्पजालेन तन्मलं परिकहरयते॥ वही पृ. सं. 541 (3/96/26)
11. सदसत्ता न्यत्याशु सत्तां वा सत्तवमञ्जरना। सत्ता सत्ता विकध्योऽयं तेन मायेति कथ्यते॥ वही पृ. सं. 542 (3/96/29)
12. श्रुत्वा स्पृष्ट्वा च दृष्ट्वा च भुक्तवा घ्रात्वा विमृस्च। इन्द्रमानन्दयत्येषा तेनेन्द्रियमिति स्मृतम्॥वही पृ. सं. 542 (3/96/27)
13. सर्वस्य दृश्यजालस्य परमात्मन्य लक्षिते। प्रकृतत्वेन भावानां लोके प्रकृतिरूच्यते॥वही पृ. सं. 542 (3/96/28)
14. यथा गच्छति शेलूषौ रूपाण्यलं तथैव हि। मनो नामान्यनेकानि धत्तो कर्मान्तरं व्रजत्॥ वही पृ. सं. 543 (3/96/43)